

(१)

भारत के नभ का प्रभापूर्य
शीतलच्छाय सांस्कृतिक सूर्य
अस्तमित आज रे—तमस्तूर्य दिङ्मण्डल ;

उर के आसन पर शिरस्त्राण
शासन करते हैं मुसलमान ;
है ऊर्मिल जल, निश्चलत्प्राण पर शतदल ।

(४)

रिपु के समक्ष जो था प्रचण्ड
आतप ज्यों तम पर करोद्दण्ड,
निश्चल अब वही बुँदेलखण्ड, आभा गत,

निःशेष सुरभि, कुरबक-समान
संलग्न वृन्त पर, चित्य प्राण,
बीता उत्सव ज्यों, चिह्न म्लान, छाया श्लथ।

(५)

वीरों का गढ़, वह कालिंजर,
सिंहों के लिये आज पिंजर,
नर हैं भीतर, बाहर किन्नर-गण गाते,

पीकर ज्यों प्राणों का आसव
देखा असुरों ने दैहिक दव,
बंधन में फँस आत्मा-बांधव दुख पाते।

(१८)

जलदों ने पहना [illegible]
[illegible] - [illegible] - [illegible]
जो [illegible] की [illegible]
[illegible] - [illegible] पुष्ट-देह [illegible]
अपने प्रकाश से [illegible]
प्रतिभा का [illegible] परिचय, [illegible] ,

(१९)

नीली उस यमुना के तट पर
राजपुर का नागरिक मुखर ---
[illegible] - विद्याध्ययनार्थ है संस्थित ,
प्रियजन को जीवन प्यार चपल
जल की शोभा का सा उत्पल
सौरभोच्छलित [illegible] स्थल-स्थल दिक-दिक।

(२४)

उस मानस ऊर्ध्व देश में भी,
ज्यों राहु-ग्रस्त आभा रवि की,
देखी कवि ने छवि छाया-सी, भरती-सी—

भारत का सम्यक् देश-काल,
खिंचता जैसे तम-शेष जाल,
खींचती वृन्त से अन्तराल करती-सी।

(२५)

देखे भिन्न-भिन्न भावों के दल
क्षुद्र से क्षुद्रतर, हुए विकल,
पूजा में भी प्रतिरोध-अनल है जलता;

हो रहा भस्म अपना जीवन,
चेतना-हीन फिर भी चेतन,
अपने ही मन को यों प्रति मन है छलता।

(२०)

चलते-फिरते, पर निःसहाय,
वे दीन, क्षीण कंकालकाय,
आशा-केवल जीवनोपाय उर-उर में,

रण के अश्वों से शस्य सकल
दलमल जाते ज्यों, दल के दल
शूद्रगण क्षुद्र-जीवन-संबल, पुर-पुर में।

(२१)

वे शोष-स्वास, पशु, मूक-भाष,
पाते प्रहार अब हताश्वास,
सोचते कभी, आजन्म ग्रास द्विजगण के

होना ही उनका धर्म परम,
वे वर्णाधम, रे द्विज उत्तम,
वे चरण—चरण बस, वर्णाश्रम-रक्षण के।

(५०)

इसके सुन्दर होते ही रे,
उठता नव मन धीरे धीरे
केसर-रज-सम स्वच्छ है होरे—पर्वतचय ,

यह बनी प्रकृति, पर रूप सुन्दर
जगमग-जगमग सब वेश वन्य
सुशोभित हिम-शिखर, रवि तुम्हें धन्य, नागाधिराज।

(५१)

यह भी पावन गृहिणी उदार
गिरि-वर उरोज, सरि पयोधार
सर वनान्तर, फैला कर निहारती देती ,

सब जीवों पर है एक दृष्टि,
दल-दल पर इसकी सुधा-वृष्टि ,
प्रेमी चढ़ती वसन वृष्टि नव लेती।

(४४)

फिर पंचतीर्थ को चढ़े सकल
गिरिमाला पर, हैं प्राण चपल
स्वदर्शन को आतुर-पद चल कर पहुँचे।
फिर कोटतीर्थ देवांगनादि
लख साधक-श्रम हो विगत-व्याधि
नत-पद चल कटक, उपाधि भी, न कुँचे।

(४५)

लाँघ हनुमद्धारा द्रुततर,
झरता झरना वीर पर प्रखर,
लख कर कवि रहा भाव में भर कर क्षण-भर,
फिर उतरे गिरि, चल किया पार
पथ—पयस्विनी सरि मृदुल-धार,
स्नानात भजन, भोजन, विहार गिरि-पद पर।

(५२)

'बंध के बिना, कह, कहाँ प्रगति ?
गति-हीन जीव को कहाँ सुगति ?
रति-रहित कहाँ सुख ? केवल क्षति-केवल क्षति,

यह क्रम-विनाश, इससे चल कर
आता सत्वर मन निम्न उतर,
छूटता अंत में चेतन स्तर, जाती मति।

(५३)

'देखा प्रसून को, वह उन्मुख !
रँग - रेणु - गंध भर व्याकुल - सुख,
देखता ज्योतिमुख आया दुख - पीड़ा सह।

चटका कलि का अवरोध सदल,
वह शोधशक्ति, जो गर्वोच्छल,
खुल पड़ती पल - प्रकाश को, चल परिचय वह।

(७२)

यह नहीं भान गुन, छाया-छल ,
गीति न प्रिया की सुस्वर, मधुर ,
गति-नृत्य, ताल-गुंजित-नूपुर चरणाकुल ,

व्यंजित नयनों का भाव सघन
भर देता जो करता क्षण-क्षण ,
रहता कोई मन में उन्मन सुन रे सुन ।

(७३)

वह आज हो गई दूर तान
इसलिये मधुर वह और गान
सुनने को व्याकुल रूप प्राण प्रियतम के ,

छूटा जग का व्यवहार-ज्ञान ,
पग उठे उसी मग को अजान ,
कुल मान ध्यान सब स्नेह दान-सम्भ्रम से ।

(४३)

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

(४४)

[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible]
[illegible]
[illegible]

([illegible])

[illegible] फिर [illegible] [illegible] के सब जन
फिर लौटे निज-निज [illegible]-शयन
पि[illegible]लों में बँध पिया-[illegible] चपलों [illegible]

पलकों से [illegible] [illegible]-[illegible]
[illegible] भरे पहला सुहाग
[illegible] से [illegible] रहे [illegible] स्वप्न [illegible]।

([illegible])

[illegible] में [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] था [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]
[illegible] डरती ही [illegible]-[illegible] वह

लख-लख [illegible]-सुख पूर्ण-[illegible]
लहराया [illegible] [illegible]-मधुर [illegible],
[illegible] ज्वार [illegible]-[illegible]-[illegible] हार, वह

(८८)

कुछ समय अनन्तर, स्थित रह कर,
स्वर्गाभा वह स्वरित प्रखर
स्वर में झर-झर जीवन भर कर ज्यों बोली ;
अचपल ध्वनि की चमकी चपला,
बल की महिमा बोली अबला,
जागी जल पर कमला, अमला मति डोली—

(८९)

"धिक्! धाए तुम यों अनाहूत,
धो दिया श्रेष्ठ कुल-धर्म धूत,
राम के नहीं, काम के सूत कहलाए!
हो बिके जहाँ तुम बिना दाम,
वह नहीं और कुछ—हाड़, चाम!
कैसी शिक्षा, कैसे विराम पर आए!"

(८८)

दृष्टि से भारती से बँध कर
कवि उठता हुआ चला ऊपर;
केवल अंबर—केवल अंबर फिर देखा;
धूमायमान वह घूर्ण्य प्रसर
धूसर समुद्र शशि - ताराहर,
सूझता नहीं क्या ऊर्ध्व, अधर, क्षर रेखा।

(८९)

चमकी तब तक तारा नवीन,
द्युति नील-नील, जिसमें विलीन
हो गई भारती, रूप - क्षीण महिमा अब;
आभा भी क्रमशः हुई मंद,
निस्तब्ध व्योम—गति-रहित छंद;
आनंद रहा, मिट गए द्वंद्व, बंधन सब।

(९०)

थे मुँदे नयन, ज्ञानोन्मीलित,
कलि में सौरभ ज्यों, चित में स्थित,
अपनी असीमता मे अवसित प्राणाशय
जिस कलिका मे कवि रहा बंद,
वह आज उसी मे खुली मंद,
भारती - रूप मे सुरभि-छंद निष्प्रश्रय।

(९१)

जब आया फिर देहात्मबोध,
बाहर चलने का हुआ शोध,
रह निर्विरोध, गति हुई रोध - प्रतिकूला,
खोलती मृदुल दल बंद सकल
गुदगुदा विपुल धारा अविचल
वह चली सुरभि की ज्यों उत्कल, नि शूला—

(९२)

बाजीं बहतीं लहरें कलकल,
जागे भावाकुल शब्दोच्छल,
गूँजा जग का कानन-मंडल, पर्वत-तल;

सूना उर ऋषियों का ऊना,
सुनता स्वर, हो हर्षित, दूना,
आतुर भावों से जो भूना, था निश्चल।

(९३)

जागो, जागो, आया प्रभात,
बीती वह, बीती अंध रात,
झरता भर ज्योतिर्मय प्रपात पूर्वाचल,

बाँधो, बाँधो किरणें चेतन,
तेजस्वी, हे तमजिज्जीवन:
आती भारत की ज्योतिर्घन महिमाबल।

(९४)

"होगा फिर से दुर्धर्ष समर
जड़ से चेतन का निशिवासर,
कवि का प्रति छवि से जीवनहर, जीवनभर ;
भारती इधर, हैं उधर सकल
जड़ जीवन के संचित कौशल ;
जय, इधर ईश, हैं उधर सबल माया-कर।

(९५)

"हो रहे आज जो खिन्न-खिन्न
छुट-छुटकर दल से भिन्न-भिन्न
यह अकल-कला, गह सकल छिन्न, जोड़ेगी,
रवि-कर ज्यों विंदु-विंदु जीवन
संचित कर करता है वर्षण,
लहरा भव-पादप, मर्षण-मन मोड़ेगी।"

(९६)

"देश-काल के शर से बिंध कर
यह जागा कवि अशेष - छविधर
इसका स्वर भर भारती मुखर होएँगी ;

निश्चेतन, निज तन मिला विकल,
छलका शत-शत कल्मष के छल
बहती जो, वे रागिनी सकल सोएँगी।

(९७)

"तम के अमार्ज्य रे तार - तार
जो, उन पर पड़ी प्रकाश-धार ;
जग - वीणा के स्वर के बहार रे, जागो ;

इस कर अपने कारुणिक प्राण
कर लो समक्ष देदीप्यमान—
दे गीत विश्व को रुको, दान फिर माँगो।"

(९८)

क्या हुआ, कहाँ, कुछ नहीं सुना,
कवि ने निज मन भाव में गुना,
साधना जगी केवल अधुना प्राणों की,

देखा सामने, मूर्ति छल-छल
नयनों में छलक रही अचपल,
उपमिता न हुई समुच्च सकल तानों की।

(९९)

"जगमग जीवन का अंत्य भाष—
"जो दिया मुझे तुमने प्रकाश,
अब रहा नहीं लेशावकाश रहने का

मेरा उससे गृह के भीतर;
देखूंगा नहीं कभी फिर कर,
लेता मैं, जो वर जीवन-भर बहने का।"

(१००)

चल मंदचरण आए बाहर,
उर मे परिचित वह मूर्ति सुघर
जागी विस्मयमय महिमाधर, फिर देखा—

संकुचित, खोलती श्वेत पटल
बदली, कमला तिरती सुख-जल,
प्राची-दिगंत-उर में पुष्कल रवि-रेखा।

(१)

मुसल्मानों के आक्रमण से हिन्दू संस्कृति का जो ह्रास हो गया है, उसी का यहाँ वर्णन है।

प्रभापूर्ण—प्रकाश भरने वाला।

शीतलच्छाय—शीतल छायावाला। सूर्य चूंकि संस्कृति का है, अतः शीतल छाया देनेवाला है।

सांस्कृतिक सूर्य—संस्कृति का सूर्य, ऊपर जिसके विशेषण दिए गए हैं।

अस्तमित— विदेशियों के आक्रमण के कारण वह सूर्य आज अस्त हो गया।

तमस्तूर्य दिङ्मंडल—सूर्य अस्त होने से जैसे दिशाएँ अंधकार की तुरही बजा रही हों।

उरके शिरस्त्राण—शिर की रक्षा करने के लिए मुसलमान राजा हैं पर वे छाती पर बैठ कर शासन करते हैं, भारतीयों को दास बनाए हैं।

ऊर्मिल जल—भारतीय जीवन का जल देखने को लहरों से चंचल है;

निश्चलप्राण पर शतदल—परन्तु कमल जो जल के जीवन का प्रतीक है वह प्राणहीन, निःस्पंद हो रहा है।

भारतीय संस्कृति की संध्या से इस कविता का आरंभ होता है।

(२)

उसी सांस्कृतिक संध्या का और विस्तार से वर्णन है।

अन्दो—बर्दो ।

आकुन्चित भ्रू—भौंह टेढ़ी किए।

क्रांत—पराजित।

भ्रांत—पथ-भ्रष्ट।

बर्दो की यह सन्ध्या भौंह टेढ़ी किए, मस्तक पर बल डाले आकाश में बादलों की तरह घिरी है; उसी की छाया से देश के सभी प्रांत एक के बाद एक पराजित हो गए हैं।

(३)

सन्ध्या की भयंकरता वर्षा के रूपक द्वारा चित्रित की गई है।

मोगल ..यान—मोगलों की सेना बादल है।

दर्पित...पठान—मत्त चलते हुए पठान जल से भरे नद हैं।

दहदुर्निवार—जो वज्र रोका नहीं जा सकता और गिरने पर जीवन को भस्म करने वाला है।

प्लावन की प्रलय धार—वर्षा का यह जल जीवन नहीं, प्रत्युत मनुष्यों का नाश करने वाला है।

ध्वनि हर हर—उसकी ध्वनि में हर हर सुनाई देता है; वह प्राणों का हरण करने वाला है।

(४)

आतप—सूर्य।

करोद्दंड—किरणों से उद्दंड।

निश्चल—गतिहीन, प्राणहीन। जैसे जल पर कमल था।

आभागत—प्रकाशहीन।

निःशेष...समान—गंधहीन केतकी के फूल के समान।

सलग्न. . .प्राण—क्षत पर फूल लगा तो है परन्तु प्राणों मे उत्साह नही, वहाँ चिंता ने वास कर रखा है।

बीता. .श्लथ—जैसे कहीं उत्सव हो गया हो और अब वहाँ केवल बीते उत्सव के चिन्ह मात्र रह गए हो, जैसे छाया ढीली पड़ी हो।

भाव—शत्रु पर बुंदेले ऐसे आक्रमण करते थे जैसे अधकार पर सूर्य किंतु अब वे निस्तेज हो गए हैं।

(५)

कालिजर का गढ किसी समय वीरो का दुर्ग था, आज उनके लिए बदी-गृह है।

पिंजर—पिंजरा, बदीगृह।

किन्नर—बाहर नपुसक उत्सव मना रहे हैं, अपनी दासता पर मग्न होकर।

पीकर . .पाते—प्राण शक्ति की मदिरा पीकर जैसे असुरो ने दैहिक यातना भोगी। आध्यात्मिक शक्तियाँ जैसे माया के बधनो में पड़ कर दुख झेलती है (उसी प्रकार भारतीय वीर इस समय यत्रणा पा रहे हैं)।

(६)

ऊपर नर और किन्नर का अतर बताया जा चुका है, यहा राजपूत और राजा के वेश मे सूतो का अतर दिखाया गया है। जो सच्चे राजपूत थे, वे तो देश के लिए लड़ कर स्वर्ग चले गए, जो बचे हैं वे सूत, बदी मात्र हैं।

शयित—समरभूमि मे सोकर।

अक्षर—अमर।

[illegible] [illegible]हीन, देवता।

दुर्धर्ष—भयकर युद्ध करने वाले।

जगतारण—ससार की रक्षा करने वाले।

राजपूत—वे देशमाता के सच्चे पूत थे।

(७)

इस प्रकार इस्लाम ने भारत पर विजय पाई और देश का जीवन उसी विदेशी सस्कृति के अनुरूप ढलने लगा।

तूर्ण—शीघ्र।

सबद्ध—सगठित।

जन-जनपद—व्यक्ति और समाज सभी यवन सभ्यता से प्रेरित है।

सचित—एकत्र की हुई।

जीवन ..धार—भारतीय जीवन की तीव्र धारा।

इस्लाम . पार—इस्लाम सस्कृति के सागर की ओर, अपार ! (नदियाँ आदि)।

बहती...वशवद—जीवन के नदी-नद उसी सागर की ओर बहते है। प्रत्येक जन हार कर विजेताओ का वशवर्ती हो उन्ही की सी कहने लगा है।

(८)

इस्लाम सभ्यता के मोह का चित्रण।

धौत धरा—आक्रमण की प्रथम वर्षा के बाद जैसे शरद् आई हो।

तापप्रशमन—ताप को शात करने वाली (हवा)।

चिर...उन्मन—जैसे लोगो के आलिगन के लिए उन्मन हो।

शशधर—भारतीय संस्कृति के सूर्य के अस्त होने पर मुस्लिम सभ्यता के चद्र का उदय हुआ है। उसका अमृत प्रेयसी पृथ्वी के अधरो को सीचता है।

सजीवन—झरते अमृत के चुंबन पृथ्वी को जीवन देते हैं, अर्थात् सब लोग भोग विलास में लिप्त हैं।

(९)

विलासपूर्ण जीवन का चित्रण।

सुख-स्वरित जाल—सुख के स्वरों से बुना जाल।

केवल-कल्प काल—केवल कल्पना में सुख देने वाला, वास्तविक आनंद से हीन।

कामिनी...चलता—समय की गति सुंदरियों के इशारों पर निर्भर है।

मृदु-मंद-स्पंद—प्राणों के स्पंदन भी अत्यंत मधुर और मंद हो गए हैं।

लघु.. छंद—जीवन सजा-बजा, सधे ताल पर चल रहा है; मुक्त प्रवाह उसमें नहीं है।

होगा ..मलता—शायद ही कोई ऐसे में विलास से विमुख स्वतंत्रता की साधना में मग्न होगा।

(१०)

जैसे पानी में बहता फूल अपनी गति-विधि भूल जाता है वैसे ही देश इस सभ्यता के प्रवाह में दिशा ज्ञान खो बैठा है। किनारे के पत्थर की भाँति वह कृत्रिम जीवन की छलना को नहीं समझ पाता।

प्रमुद—प्रसन्न।

छल छल छल—जल 'छल छल' शब्द कर सचेत करता है।

परन्तु—

कल-कल—वह मन्त्र-मुग्ध कल कल, सुन्दर सुन्दर, ही सुनता है।

निष्क्रिय—अकर्मण्य।

शोभाप्रिय—मिथ्या सौंदर्य का उपासक।

कूलोपल—धारा के किनारे का पत्थर।

(११)

मुस्लिम संस्कृति का प्रसार भूमिका रूप में वर्णित हुआ। अब तुलसीदास के जन्म आदि की ओर आते हैं।

दूरप्रसर—दूर तक फैली हुई—धारा में (अर्थात् राजापुर उस समय के समृद्धिशाली नगरों में से है)।

व्यवसाय-प्रचुर—व्यवसाय के कारण उसकी समृद्धि है।

ज्योति.. छाया में—उस छाया में छाया जो ज्योति को चूमती है, जिसके हृदय में मधु से भरे कलश हैं, यानी गुम्बददार धनधान्य पूरित मकानों की छाँह में राजापुर के लोग रहते हैं।

(१२)

तुलसीदास की शारीरिक गठन, उनके विद्याध्ययन आदि का परिचय दिया जाता है।

रत्नचेतन—रत्न के समान अपनी चेतना से शोभित।

समधीत ..लोचन—शास्त्र, काव्य, और आलोचनाएँ जिसने पढ़ी हैं।

आयतदृग—विशाल नेत्र।

अपने प्रकाश में निःसंशय—अपने ज्ञान के बल पर वह निःशङ्क है।

प्रतिभा ..संस्मारक—प्रतिभा का सुचारु परिचय देने वाला और उसे दूसरों के लिए स्मरण करने के योग्य बनाने वाला है।

(१३)

मुखर—वाक्पटु ।

क्रीडितवय . सस्थित—क्रीडा और विद्या मे उचित समय लगा कर अब जीवन मे प्रतिष्ठित हैं।

प्रियजन...चारु—अपने प्रियजनों को जिसका सुन्दर जीवन है।

चपल . उत्पल—जैसे चञ्चल कमल जल की शोभा को बढाता है।

सौरभोत्कलित ..दिक—उसकी सुगन्ध से आकाश, पृथ्वी, दिशाएँ सभी प्रसन्न हैं।

तुलसीदास की विद्या, चरित्र आदि पर सभी लोग मुग्ध हैं।

(१४)

एक दिन वह मित्रों के साथ चित्रकूट गए और वहाँ पर प्रकृति की शोभा देखी।

सहोच्छ्वास—उत्साह से भरे हुए।

नवप्रकाश—प्रकृति के दर्शन से मन में नई भावनाएँ जाग्रत हुईं।

वह भाषा...रँगकर—प्रकृति की भाषा स्पष्ट न होकर कुछ छिपती सी अपनी ही आभा मे रँगी हुई थी।

वह भाव...भाया—प्रकृति-दर्शन से उत्पन्न भाव कुहरे की कुडली सा उनके मन को लगा अर्थात् आधा वह स्पष्ट था आधा अस्पष्ट परतु अत्यत आकर्षक।

(१५)

प्रकृति की छवि देख कर उनके पुराने विस्मृत सस्कार जागने लगे।

केवल ..मन—उनके मन मे केवल विस्मय का भाव था।

चित्र नयन—नेत्रों में किसी भूली बात को याद करने की हल्की चिंता सी थी ।

परिचित...प्रियजन—वस्तुएँ कुछ परिचित जान पड़ती थीं, कुछ भूली सी, जैसे कोई प्रियजन बहुत दिनों के बाद देखने पर सहसा पहचान में नहीं आता ।

ज्यों दूर...रेखा—समुद्र से देखने वाले को जैसे पार की धुंधली रेखा दिखाई देती है ।

हो मग्न...सी देखा—बीच में, तरंगों से आकुल परन्तु निःशब्द, स्वप्न संस्कारों का समुद्र जैसे लहराता हो । जल में छवि की अस्फुट छाया मात्र पड़ती सी जान पड़ी ; वास्तविक सौंदर्य इन संस्कारों के परे था ।

(१६)

प्रकृति में व्याप्त आनंद का भान कवि को हुआ ।

वीरुध्-वीरुध्—लताएँ ।

मसृण—कोमल ।

जैसे...लख कर—जैसे वे लता-गुल्म कुछ देख कर अपने प्राणों से उऋण हो गये, किसी तरह का नागरिक-ऋण-बोध उन्हें न रह गया ।

भर...उछाह—कवि को अपनी बाहों में भर लेने को जैसे प्रकृति ने अपनी बाहें फैला दी हों ।

गिनते ..रखकर—मिलने के लिए दिन गिने जा रहे थे ; अब चाह पूरी हुई है । आँखों का पलक भाँजना भी बंद हो गया ।

(१७)

प्रकृति दर्शन से उत्पन्न भावों को शब्दों का रूप दिया गया है ।

प्रकृति अपनी वेदना कह कवि को सत्ता की खोज के लिए प्रेरित करती है।

कहता प्रति जड.. प्रमन—जड पदार्थ चेतन तुलसीदास से कहते हैं कि उन्हें अभी तक प्रकृति के विषय में भ्रम था।

प्रमन—प्रसन्न।

यह . वहता—उन पदार्थों का मन भार-स्वरूप श्वान को निराश सा वहन करता है।

धूलिधूसरित छवि—प्रकृति की छवि जो इस समय धूलि से रँगी निष्प्राण हो रही है।

जड रवि—प्रकृति का नव जीवन चला गया है। जड़ सूर्य उसे जलाता है।

(१८)

हनती.. जल—सूर्य की गर्मी में पत्थर जल कर रह जाता है।

ऋतु आते—प्रबल ऋतुएँ प्रकृति पर आतंक जमाती आती हैं।

वर्षा में.. अरि—वर्षा में कीचड़ पानी से नदी भरी थी। शरद् में वही क्षीण हो जाती है और उनकी क्षीणता का कारण (हिमअरि) सूर्य है।

केवल . जाते—इससे निष्कर्ष यह निकला कि उदर भरने वाले लोग अपनी स्वार्थ-सिद्धि करके दूसरों को दुख देकर चले जाते हैं।

(प्रकृति का रूपक दूसरी ओर उस काल के समाज पर भी लागू है)।

(१९)

फिर . चरण—स्मृति की, पुराने सस्कारों की (मनुष्य और प्रकृति दोनों के सस्कारों की) भूमि असुरों द्वारा दलित होती है।

वे शुभभाव...अब—पुराने जीवित संस्कार इस समय छिपे आभूषण से लुप्त हो गए हैं।

इस जग ..गान—हे मुक्तप्राण, संसार की मुक्ति के सुंदर गीत गाओ (प्रकृति की दासता ऊपर दिखाई दी जा चुकी है।)

त्यागोज्जीवित...धारास्तव—वह गान त्याग के जीवन की भावना से अनुप्राणित हो, ऊर्ध्व, सांसारिकता से परे तत्त्व का ध्यान उसमें समाहित हो, और धारा के समान उस स्तव, वंदना, का प्रवाह हो। अर्थात् वह गान मनुष्यों को नव जीवन देने वाला हो।

(२०)

उसी नवीन गान के लिए और भी प्रेरणा है।

तार—वीणा के तार। चढ़ाने से भाव है कि गान में जीवन की पूर्ण स्फूर्ति हो।

पाषाणखंड—बिना ज्ञान के प्रकृति जड़ है। वही ज्ञान का स्पर्श पाने से हार स्वरूप हो सकती है जैसे श्रीराम के स्पर्श से अहल्या पत्थर से नारी होगई थी।

अन्यथा—बिना ज्ञान के स्पर्श के, प्रकृति अपने बाहरी दिखाई देने वाले रूप में जड़ है।

वन्धुर—दुर्गम ; ऊँचे नीचे।

पंकिल—कीचड़ से भरी (नदी)।

(२१)

मुसलमान सभ्यता में पड़े हुए भारतीयों की दुर्दशा की ओर प्रकृति भी इंगित करती है। पार्थिव ऐश्वर्य के मोह में सत्य की ज्योति ढँक गई है।

अव स्मर...अवर—कामदेव के शर केशर के हैं, उनसे झरती रज पृथ्वी-आकाश को रँग रही है। अर्थात् चारो ओर माया का साम्राज्य है।

जागरणोपम.. भर—यह माया जागरण-सी लगती है परन्तु है वास्तव मे सुप्ति का विराम, जिसमे मनुष्य अपनी चेतना खो बैठता है। यह भ्रम सभी को भुलावे मे डाले हुए है।

(२२)

फूलो की सुगध से लदी वायु जैसे वन को व्याकुल कर देती है, वैसे ही तुलसीदास का भी चित्त प्रकृति का यह सदेश सुन कर उन्मन हो गया।

उस शाखा का वन-विहग—तुलसीदास का मन जो अपनी पार्थिवता मे चित्रकूट मे था, ध्यान मे लीन होकर ऊपर को उठने लगा।

मुक्त नभ निस्तरग—तरगहीन अचचल आकाश तुलसीदास का मनोदेश ही है।

छोडता...जीवन—जिन रँगो को उनका मन छोड रहा है, वे सस्कारो के रँग है। अगोचर सत्य उनसे परे है और उसी की खोज मे कवि का मन ऊपर उठ रहा है।

(२३)

ऊर्ध्वगामी मन की क्रिया का सविस्तर वर्णन है। वह ऊपर ही ऊपर उठता जाता है और सजे हुए संस्कारो की सतहो को पार करता जाता है। जैसे वह एक रँग छोडता है, वैसे ही दूसरी सस्कारो की तरग ऊपर उठती है जैसे सध्या-समय सूर्य की आभा आकाश मे ऊपर उठती है। नभोदेश कह कर स्पष्ट कर दिया गया है कि जिस प्रदेश को तुलसीदास का मन पार कर रहा है, वह उन्ही के भीतर है।

पहले मन को विहग के रूप में उड़ाकर यहाँ आकाश को मन्ना ज्योति से घिरवाने में सार्थक व्यंजना है।

(२४)

मन की इस उडान ने तुलसीदास को तत्कालीन भारतीय सभ्यता का पूरा आभास मिल गया।

मानस ऊर्ध्व देश—अनेक संस्कारों की तरगें पार करने पर जिस सतह पर उनका मन था।

भरती . काल—जिस छाया के समान छवि को कवि ने देखा वह भारत के देश-काल को पूर्णतः अपने में भरती सी जान पडती थी।

खिचता...जाल—जैसे जाल अधकार-शेष रह गया हो, इस प्रकार वह देशकाल दिखाई दिया।

खींचती...करती सी—बृहत् से अनराल करके, जुदा करके, वह देश काल की छवि लोगों को खींच रही थी। भारत की सभ्यता दॅधी हुई सी तुलसीदास को दिखाई दी।

(२५)

भारतीय सभ्यता का जो चित्र तुलसीदास के सामने आया, उसी का विस्तृत परिचय आगे दिया गया है।

बॅध ..विकल—छोटे छोटे भावों के दल बॅध कर कवि को क्षुद्र से क्षुद्रतर मालूम हुए।

जिन भावों से यह संस्कृति बनी थी, वे अन्यत तुच्छ मालूम हुए।

पूजा...जलता—पूजा जो मुक्ति के लिए होनी चाहिए, पार्थिव इच्छाओं की पूर्ति के लिए की जाती है। इसलिए उसमें माया का प्रतिरोध अग्नि के समान भीतर ही भीतर जलता है। वह

मनुष्य को मुक्ति की ओर न ले जाकर उसके पतन का कारण बनती है।

हो रहा .जीवन—अनल का जलना ऊपर बताया गया है। उसी से जीवन भस्म हो रहा है।

चेतना. .चेतन—जब पूजा का यह रूप है तब माया में भूले हुए मनुष्य को चेतन कैसे कहा जाय?

अपने.. छलता—परतु मनुष्य तो अपने को चेतन समझता ही है। यही उसकी छलना है और उस समय की भारतीय सभ्यता का यही रूप है। सत्य से दूर माया के वह निकट है।

(२६)

इसने—मनने, जिसका ऊपर जिक्र हो चुका है।
दूसरी शक्ति—इस्लाम की शक्ति।

साकार . जीवन मे—जैसे निराकार जीवन मे साकार होता है, वैसे ही वह शक्ति भारतीय जीवन मे व्याप्त हो गई (आगे जैसा कहा गया है, ऋतु का प्रभाव वृक्ष मे सचित रहता है)।

यह. जित—विजित देशकाल का चित (मन) उसी शक्ति से घिरा हुआ है।

ऋतु ..तनमे—वह शक्ति भारतीय जीवन मे ऐसे व्याप्त है जैसे तरु मे ऋतु का प्रभाव सचित हो।

(२७)

वे . वर्णों के—भारतीय समाज का आदि संगठन-क्रम नष्ट हो चुका था, इसीलिए इस नई शक्ति को उस पर विजय पाने मे सरलता हुई। चार वर्णों की मर्यादा भग हो चुकी थी।

तृष्णोद्धत. .सगर्व—क्षत्रिय समाज की रक्षा करने मे असमर्थ

थे। वे उद्धत थे तो तृष्णा से, सच्चे पराक्रम और धर्म से नहीं; गर्व की मात्रा उनमें विशेष थी।

हत...पर्णों के—पर्ण-कुटी के रहने वाले साधारण लोग कुचले हुए थे।

(२८)

निम्न वर्गों का वर्णन है।

आशा...उर में—प्रत्येक हृदय में पेट भरने की कामना ही है और इसी आशा से वे जीते हैं।

क्षुद्र-जीवन-सबल—जिन्दगी पार करने के थोड़े ही सामान शूद्रों के पास थे।

(२९)

शेषश्वास—वे, उन, शूद्रों से साँस लेने भर को जीवन है।

मूक-भाष—अपनी वेदना मुँह से कह भी नहीं सकते।

चरण ..रक्षण के—शूद्र समाज-पुरुष के चरण मात्र ही रह गये हैं। उनमें मस्तिष्क वाली कोई बात नहीं।

(३०)

गुरुभार—ब्राह्मणों ने सेवा का भारी भार शूद्रों पर रखा।

विषम...सम—सेवा के लिए जो पहले शूद्रों को पद मिला वह अब सम्मानहीन हो उनके लिए विष-तुल्य हो गया।

द्विज लोगों . छाया—ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों पर ही इस्लाम की शक्ति वाली वह छाया फैली अपना काम कर रही थी।

वर, क्या माया—उस छाया को देख कवि समझा देश के लिए क्या वर था, क्या माया (अभिशाप) थी।

(३१)

इस इस्लाम की सभ्यता के भीतर भारतीय जीवन बँधा हुआ है।

कलरव—प्राणों की क्रिया।

तमका आसव—माया का मद।

ज्योति.सर—ज्योति में चलने वाला।

(३२)

दीनो...पीड़ाकर—यह दासता दीनों की पुकार से छिन्न नहीं हो सकती। भौतिक ऐश्वर्य का अधकार दीनो से कहीं अधिक सबल है।

जब...तृष्णापर—जब तक मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए भारत पर आक्रमण करते रहेंगे (तब तक दीनों की मुक्ति असभव है)।

(३३)

कवि ने सोचा कि मुक्ति इस इस्लामी सस्कृति के परे है।

मानस ..सभग—इस्लाम की छाया जो भारतीय सस्कृति को ढके हुए है।

अनिल.. घर—यह छाया वास्तविक नहीं, हवा की तरह वहने वाली, अदृश्य है। इसके ऊपर किरणों का घर है अर्थात् सत्य का आलोक इस छाया से परे है।

रविकुल...जो—वह सत्य का घर सूर्य की किरणों के सस्पर्श से जीवित है। वही मानस का वास्तविक धन भी है। रामचरित मानस और उसके नायक रामचद्र की ओर भी इगित है कि सूर्यवश की आत्मा वही किरणों का घर है।

(३४)

है वही...कूप—मुक्ति वहीं है: यह संसार तो दासता के लिए कुँआ सा है।

वह रंक...रे—जो यहाँ राजा है वह छल-प्रपन्च के ही कारण, ज्ञान की दृष्टि से वह रंक मात्र है।

यही...जय के—संसार में बड़े बनने के यही तरीके हैं। दूसरों का धन अपहरण किए बिना आदमी बड़ा बन नहीं सकता; इसीलिए वह वास्तव में तुच्छ है।

(३५)

तिमिर—माया का अंधकार।

मिहिरद्वार—सूर्य की आभा से प्रकाशित सत्य का द्वार।

जीवन के प्रखर ज्वार में इस अज्ञान के जीवन से परे सत्य की खोज के भरे जीवन में।

भिन्न भी देह—देह के नष्ट होने पर भी।

निज घर निःसंशय—निःशंक होकर (या निश्चित रूप से) उसी सत्य के घर पहुँचना है।

(३६)

तुलसीदास के प्राणों में उस छाया से युद्ध करने की जो चेष्टा हुई, उसी का वर्णन है।

कल्मषोत्सार—पाप को नाश करने वाले।

दुर्दम—अप्रतिहत।

चेतनोर्मियों के प्राण प्रथम—चेतना की लहरों के प्रथम प्राण। जो शक्ति क्रियाशील हुई वह उनकी चेतना में प्राथमिक थी; अभी उनका पूर्ण मानव युद्धोन्मुख न हुआ था।

रुद्ध द्वार—ज्ञान का द्वार जो अभी बंद है ।

ज्ञानोद्धत—ज्ञान से उद्धत , ज्ञान होना चाहिए, इस आवश्यकता का ज्ञान ही उनकी प्रेरणा है ।

उमड़े—चेतनोर्मियों के प्राण उमड़े ।

भारत का भ्रम— उनके प्राणों की क्रिया उनका अपना अज्ञान ही नहीं, सारे भारत का अज्ञान दूर करने के लिए ।

(३७)

इतना सब हो चुकने पर, जब सिद्धि निकट जान पड़ती थी, उनकी स्त्री की मूर्ति उनके मार्ग मे विघ्न बन कर उपस्थित हुई । अभी मोह से निकलने में उन्हे देर थी । यहा नारी-प्रकृति को सिद्ध किया है कि इस्लाम की शक्ति से—भौतिक ससार की समस्त शक्ति से वह ऊपर है ।

नभ...सुघर—जैसे आकाश मे तारिका चमकती है, वैसे ही उस ऊँची मन की सतह पर उन्हे रत्नावली की सुख-छवि दिखाई दी ।

सरोज-दाम—कमल की सी कांतिवाली ।

वाम सरितोपम—उनके मार्ग मे वह वाम हुई जैसे किसी राही की राह मे नदी पड जावे ।

(३८)

उस छवि ने शीघ्र कवि को अपने भीतर मूंद लिया और उनका उत्थान-क्रम बंद हो गया ।

तुले तिर्यक् दृग—उसकी चढी तिरछी आंखे ।

ज्योतिर्मय स्रक्—आंखों ने अपनी ज्योति से जैसे प्रिय को ज्योति की माला पहना दी हो ।

नम्यक् शासन मे—आँखो ने प्रिय पर शासन करते हुए कहा।

पद्मल—बड़ी बरौनियों वाले।

इंदीवर. .विमल—नील कमल के सुंदर कोश के समान।

पुष्कल—वह श्रेष्ठ शक्ति (अवश्य हो गई)

(३९)

भौंरे की तरह तुलसीदास का मन रत्नावली की छवि पर क्षण भर बैठा ही था कि उस छवि-कुसुम ने अपने दल बंद कर लिए और वह उसी के भीतर बंद होकर रह गया। उनका मन नारी के रूप पर मुग्ध हो लक्ष्य तक न जा सका।

(४०)

रत्नावली के अदृश्य होते ही उनका मन धीरे धीरे नीचे उतर आया। अब प्रकृति की शोभा कुछ और ही जान पड़ी · उसका दाह और दु.ख उन्हें भूल गया।

केशर ..चय—केशर की रज से पर्वतो के समूह हरे-से मालूम देने लगे।

मायाशय—माया से अभिभूत।

(४१)

श्री पावन—प्रकृति की पवित्र छवि।

बदलती ..लेती—प्रकृति का नई नई चीजो की सृष्टि करना मानो प्रेयसी का वस्त्र बदलना है।

तुलसीदास को प्रकृति मे अपनी स्त्री की ही छवि दिखाई दी।

(४२)

जिनके कर...स्वर—प्रकृति के स्वर उसी नारी के हाथो से झंकृत स्वर है।

प्राण...जाते—प्राणों की नभी तहों को भग देते हैं ।

रागिनी...तरती—उसी नारी के सौंदर्य की रागिनी पहाड, वन और सरोवरों को पार करती है ।

(४३)

वैसी...रेखा—अपनी पहली दशा पर उतर आने पर सभी वस्तुओं का रूप भी पहले जैसा हो गया (प्रान्तर—वन) ।

(४४)

सदर्शन को—पचतीर्थ दर्शन के लिए ।

विगत व्याधि ..कुँचे—दर्शन आदि से प्रसन्न हो लौटे तो मार्ग की बाधाएँ भी भूल गए, पैरों मे काटे भी न लगे ।

कटक, उपाधि भी—विघ्न, उपद्रव होते हुए भी काटे ।

(४५)

वीर पर—हनुमान जी के पास

पथ...पयस्विनी—उनकी राह मे पयस्विनी नदी पडती थी ।

गिरिपद—पर्वत के नीचे ।

(४६)

चित्रकूट मे जहाँ जहाँ वे और गए, वहाँ वहाँ के नाम दिए गए हैं ।

(४७)

वहाँ से लौटने पर तुलसीदास उनी प्रिया की छवि के ध्यान मे मग्न हैं ।

प्रेयसी ..तन पर—प्रेयसी का मुख चद्रमा है ; उसका कलक, उसकी आँखे ; आकाश उनकी अलके हैं और उस चद्रमुख से प्रकाश निकलता है ! वह कवि के शरीर पर सुदर रेशम की तरह पड़ा हुआ है ।

मानस-चकोर—उनका मन चकोर की तरह उसी चंद्रमुख की ओर देखता है।

जीवन-भर—उनके जीवन का पोषण करने वाला।

(४८)

तुलसीदास रत्नावली को ही समस्त सृष्टि का रहस्य मानते हैं।

सौन्दर्य जगत्...सत्—अनेक सौंदर्यों में प्रकट सौन्दर्यजगत् असत् होते हुए भी सत लगता है।

वह बँधा...परिचय से—कारण कि वह एक महान परिचय से बँधा है (वह परिचय सौंदर्य का है)।

हरती—मन हरती।

वह ..झरने को—निर्झर के समान वह तुलसीदास पर अपने [स्ने]ह की वर्षा करती थी।

अविनश्वर ..भास्वर—भ्रम में पड़े लोगों को उसका बाह्य रूप ही, जो नश्वर है, दिखाई देता है, उसके भीतर अमर ज्ञान है।

वह रत्नावली ..से—रत्नावली इस जगत् की सूत्रधर है परन्तु रहस्य से, अपने बाह्य रूप से नहीं वरन् उस सौंदर्य का प्रतीक होकर जो ससार की एकता का कारण है।

(४९)

चल दीप . नयनों के—आँखे दो सुदर दीपों सी लगती हैं।

निस्तल विभ्रम के—अतहीन विलास के।

स्वच्छभास—स्वच्छ प्रकाशवाले।

भीतर.. प्रकाश—घर और बाहर ससार में प्रकाश भरने वाले हैं, तुलसीदास का घर और बाहर का ज्ञान नारी के प्रति मोह में ही सीमित है।

जीवन के.. शमदम के—वे नेत्र जीवन के नेत्र हैं (जीवन के प्रदर्शक हैं), उनमें भावों का विलास है और वे शमदम की शिक्षा देने वाले भी हैं।

तपस्या और सिद्धि तुलसीदास को उसकी आँखों में ही दिखाई देती थी।

(५०)

द्वन्द्व—वे नेत्र सासारिक सघर्ष के भी कारण हैं।

बध धारण—बन्धन की जंजीर भी वे पकड़े हैं।

निर्वाण करुणामय—करुणा से भरे वे नेत्र निर्वाण के पथ के पथिक को भ्रष्ट करने वाले हैं।

वे समर्थ—नेत्र पलकों के पर्दे के उस पार हैं, इसलिये वे ऐसे समर्थ हैं कि उनका मतलब कोई अब तक नहीं लगा सका।

सारा. जीवन-क्षय—आखों पर हुआ सारा वाद-विवाद व्यर्थ हो गया है, जीवन नष्ट हो गया है।

(५१)

प्रिया के मोह में पड़े हुए कवि के विचार दिए जाते हैं।

प्रियावरण-प्रकाश—प्रिया के आवरण के प्रकाश में; वह प्रिया का वास्तविक प्रकाश नहीं है, केवल उसका मोह है।

सहज.. सध—उसके प्रेम में वह अपना रास्ता ठीक पहचानता है।

शोभा बाहर—ऊपर नीचे घर बाहर की सभी वस्तुएँ उसी शोभा में बँधी हैं।

यह विश्व ..चपल—विश्व, सूर्य, ऋतु आदि सब उसी सौंदर्य में बँधे हैं।

बँध.. पूर्वापर— उसी छवि की गति के प्रकाश में सभी आगे पीछे की वस्तुएँ बँधी जाग्रत हैं। यद्यपि सारा संसार उस शोभा में बँधा है फिर भी वह ज्ञानवान है।

(५२)

तुलसीदास इस बँधन को अपना मन समझाने को युक्ति सिद्ध करते हैं।

क्रम-विनाश—यदि बंधन न हो तो क्रमशः मनुष्य विनाश के निकट पहुँच जायगा।

छूटना . मति—इस प्रकार अन्त में चेतन स्तर छूट जाता है और मनुष्य की मति जाती रहती है। (तुलसीदास के साथ इसके विपरीत बातें घटी हैं परन्तु वे उनका उल्टा अर्थ कर समर्थन कर रहे हैं)।

(५३)

ऊपर के तर्क के लिए एक उदाहरण देते हैं।

उन्मुख—ऊपर को उठता हुआ।

ज्योति मुख—जिनके मुख पर ज्योति पड़ती हो।

चटका ..सदल—कलि के दलों में बँधा हुआ फूल अपने बंधन को तोड़ कर आगे बढ़ता है।

शोधशक्ति—सत्य की खोज करने वाली फूल की शक्ति।

गंधोच्छल—गंध से छलकता।

पल-प्रकाश को—पुष्प की शक्ति देशकाल के ज्ञान से हीन काल के प्रकाश में खुल पड़ती है।

चल परिचय—चलता हुआ परिचय; सुगन्ध में जैसे परिचय चल है।

(५४)

जिस . समूल—गध से बँधा हुआ फूल अपने उसी बधन गध के कारण दूर दूर तक फैला रहता है (यह बधन की महिमा है)।

अप्रतिम प्रिया से. .चुबन—प्रिया से वह बँधे हुए हैं फिर भी प्रिया गध की तरह अमूर्त है, देखने को आकृति है परन्तु दोनो के ससर्ग से उत्पन्न चुबन निराकार है।

युक्त . लघिमा मे—इस प्रकार प्रिया से युक्त भी वह मुक्त है, बधन की लघिमा के कारण।

(५५)

प्रतिहत-चेतन—बेहोश।

वे नयन—कौन मनुष्य सोचता है कि वे प्रिया के नयन वास्तविक ज्ञान के नयन नहीं हैं।

वह . युवती मे—युवती मे वह केवल मछली की ध्वजा वाला काम है (आँखे मछली हैं और बाल पताका हैं)।

अपने . मुक्तकेश—पुरुपदेश अपने वश मे कर के युवती रूपी दण्ड मे ध्वजा (उसके केश) उडा रहा है।

तरुणी . .पृथ्वी मे—युवती का तन कामदेव के लिए विशेष आलम्बन है।

(५६)

जीव. मुक्ति—तुलसीदास के अपनी इच्छाओ के अनुकूल तर्क जीव की मुक्ति के लिए नहीं हैं।

भुक्ति—केवल भोग के लिए वे तर्क हैं।

शुक्ति से मुक्ता—शुक्ति से मिली जैसे मुक्ता मुक्त नहीं होती।

माया . सयुक्ता—जो जीव से मिली है वह माया है, ज्ञान प्राणशक्ति के भी ऊपर है।

(५७)

मृत्तिका.. चमका—मिट्टी से अनेक रँगों के फूल निकलते हैं, वैसे ही रत्नावली के मोह से तुलसीदास में नव नव भाव जन्म लेते हैं ।

पाकर ..दमका—सूर्य किरणों से जैसे बादल की कांति बढ़ती है, वैसे ही रत्नावली के नयनों की ज्योति से तुलसीदास का मन अनेक रंगीन भावनाओं से भर कर चमक उठा ।

(५८)

नाम-शोभन—सुन्दर नाम वाली ।

पति-रति में प्रतनु—पति को प्रसन्न करने में कोमल और तन्वंगी ।

अपरिचित ..कोई—उसका पुण्य लोगों में अज्ञात है, उसका धन जो आगे तुलसीदास की सहायता करने वाला है, अक्षय है ।

क्षोभन—क्षोभ उत्पन्न करने वाला ।

प्रिय...यष्टि—प्रिय को सन्मार्ग पर लाने के लिए यष्टि ।

प्रतिमा...समष्टि—मूर्ति में भी वह श्रद्धा की समष्टि थी, श्रद्धा जो कवि को मुक्ति की ओर ले जाने वाली थी ।

मायायन—माया के गृह में ।

प्रियशयन—व्यष्टि भर सोई—प्रिय के शयन की व्यष्टि (व्यक्ति) को भर कर सोई थी ।

(५९)

ऊषारुण—उषा के समान रंगीन ।

रात—वह पारस्परिक मोह का तमाशा देख रही थी ।

भिव...मल्वर—भ्रिम रूपी नद के दोनों जड किनारों तो भर स्वर्ग की गगा के समान मल्वर वहती थी ।

नश्वरता...करुणा—ननार की नश्वरता पर वर आँखों की प्रकाशयुता करुणा थी । तुलसीदास को माया से उबारने के लिए वही एक आशा थी ।

(६०)

धीरे...अंधकार—रत्नावली की तारा नी ज्योति से वह अधकार धीरे धीरे कुछ काल बाद पार हुआ ; अब तुलसीदास के दिन फिरने का समय आया ।

अवरोध रहित—विना किसी हिचक के ।

हँसती...छाया—छाया सी उदास तू हँसती है परन्तु अपनी ग्लानि छिपा नहीं सकती ।

(६१)

सत्वर—शीघ्र ।

(६२)

क्यों बहन न.. बल करते—उनपर बल दिखाते हुए क्या तू उनकी बराबर नहीं हो सकती ?

जामाता ..उत्तमता—माँ खुद जामाता की वाली ममता को बढ़ा देती है—लड़की को पति का प्यार सिखाती है ।
(उलाहने के रूप मे कहा गया है) ।

(६४)

कूल-द्रुम—नदी के किनारे के वृक्ष के समान, आज रहे, कल न रहे ।

कुकुम-शोभा—कुंकुम की तरह जिसकी शोभा घटी हुई हो ।

(६५)

अरर—डूबने हो गए।

उर दहला—रत्नावली का हृदय कांप उठा।

(६६)

मर्यादागर्भित—मर्यादा से बँधा (धर्म प्रकट हुआ)।

अतुल—अनुपम सौंदर्य वाली।

गगन—उसका हृदय।

भावों के घन पर घन—भावों के बादल।

स्नेह-उपवन—प्रिय के स्नेह रूपी उपवन को उसके सावन से भावों के बादलों ने घेर लिया।

(६७)

मृदुगभीर घोष—सुन्दर गंभीर स्वर में बोली।

तोष—संतोष करो।

जिन पृथ्वी ..समासीन—पृथ्वी से सीता सदोष निकली थीं, परन्तु अपनी मर्यादा की रक्षा करती उसी में समा गई। वैसे ही रत्नावली भी अपने धर्म की रक्षा करने वाली थी।

दे गई . गीता—वह पति के हाथ जैसे चुपचाप स्नेह से मलिन हुई प्रेम की पुरानी गीता दे गई।

(६८)

घर ..बहता—घर में, उस प्रकाश-प्रतिमा के चले जाने से अन्धकार छा गया।

(६९)

उधार...चले बड़े—बड़े आये कहां के सिखाने वाले, मानो हम कहीं से उसे उधार लाये हों।

दे . किनको—एक बार कन्यादान करके घर किस लिए धरे हैं।

(७०)

नीलम सोपानो पर—आकाश की नीलम की बनी सीढ़ियो पर।

आभा—संध्या की आभा उन सीढ़ियो पर पैर धरते जैसे चढ़ रही हो।

(नारी के मोह मे, प्रकृति मे भी, उसी की प्रतिच्छाया दिखाई देती है) ।

पराग-पीत—अपने पराग से पीले लगने वाले ।

अपने. .भीत—फूल अपने सुखाधिक्य से जैसे डर रहे हो।

नृत्यपर—नाचती हुई ।

(७१)

यह ... जीवन—उनका जीवन, उनकी प्रिया घर मे नही है।

नत ... आँगन—घर जैसे आँखे नीची किए है और आँगन दुखी सा मालूम होता है।

आवरण— आच्छादन, वस्त्र आदि ।

शून्य—वे सूने लगते थे ।

अपहृत-श्री—जिसकी शोभा चली गई हो ।

सुख-स्नेह का सद्म—सुख-स्नेह का घर ।

नि.सुरभि .. पद्म—हेमत ऋतु के पाले से मारे हुए गधहीन कमल के समान ।

नैतिक .. पाते—नीति वाले छद्म जैसे प्रेम नही पाते, वैसे ही वह घर भी नीरस हो रहा था।

वरणमधुरा के—रंगों मे जो मधुर है. उस नारी के बिना (रत्नावली के स्नेह के बिना घर की सभी वस्तुएँ बुरी लगती हैं)।

(७२)

छाया-उर—स्नेह की छाया सी रत्नावली जिस घर मे रहती थी, वह घर नही रहा।

गीत ... मधुर—प्रिया के गीत से प्रतिध्वनित।

गति ... चरणारुण—प्रिया की गति से ही जहा नृत्य होता था, बजते नूपुर ताल देते थे: गृह पैरो की ललाई से जैसे लाल हो रहा था।

ध्वनित ... क्षण—नयनो मे नवन स्नेह वाला जहाँ भाव ध्वनित होता था और प्रिय को प्रतिक्षण गुंजित करता था।

कहता ... सुन—कोई, ऐ उजडे हुए, सुन तू सुन। मन से कहता था।

(७३)

वह ... प्रियतम के—गीत दूर जाने से और प्रिय हो गया अत. तुलसीदास प्रिया से मिलने के लिए और भी व्याकुल हुए।

व्यवहार-ज्ञान—साधारण व्यवहार की बाते भी याद न रहीं।

कुलमान-ध्यान श्लथ—कुल के मान के ध्यान से हीन (उनके पग)।

स्नेहदान-सक्षम से—स्नेह दान करने मे समर्थ है जो उनके कुल और मान को तोड़ कर पैर उठे।

(७४)

राह मे प्रकृति आनन्द में डूबी दिखाई देती है।

पिक-कुहरित—वृक्षो की डालियो पर कोयलें बोलती हैं।

सुमन-माल—वृक्षों पर फूल माला के समान पड़े हुए हैं।

ज्योतिः प्रपात—सूर्य की किरण उनपर पड़ती है।

कनकगात—सोने की सी देह लिए।

मधुधीर—फूलों का मधुपान करने से गंभीर-गति वाली।

ज्ञात—उसका स्नेह दूसरों पर प्रकट है।

आलिंगित—फूल, लता आदि द्वारा आलिंगन की जाती हुई।

(७५)

धूसरित बालदल—चरवाहे बालक धूल से भरे हैं।

पुण्यरेणु—उनपर चढ़ी धूल भी पवित्र दिखाई देती है।

चारणवारण-चपलधेनु—चराये और हाँके जाने से चपल गायें।

आगई ..वादन की—कृष्ण के बंसी बजाने की याद आ गई।

चपलानंदित .गगन—उस आकाश की याद आगई जिसमें बादल घिरे हुए थे और बिजली चमक रही थी।

गोपी श्री—वह वनश्री गोपियों के यौवन को मोहने वाली थी।

(७६)

सुख की वंशी—प्रकृति के मोहक स्वर।

रत्नधर—रत्नावली के पति, रत्न को धारण करने वाले।

रमाके पुर—लक्ष्मी, अपनी स्त्री, के गाँव।

कुछ . कान-कान— कुछ लोगों ने कानाफूसी की कि इतनी जल्दी कैसे आगए।

सुन ..रतन श्री—इतनी जल्दी आना तुलसीदास का अपनी पत्नी के प्रति प्रेम सूचित करता है।

(७७)

जल...अंग—भाभी के व्यंग्य से रत्नावली के अंगों में आग लग गई ।

चमकी...नरग—उसके चंचल नेत्रों में अग्नि जल उठी ।

तापक्षर—आंतरिक ताप से पीड़ित ।

रह गई ..वरमाला—मुरझाये दलों की खुशबू वाली वरमाला के समान रत्नावली रह गई ।

(७८)

बोली.. पुरुषोत्तम—मन में असमर्थ होकर मर्यादा पुरुषोत्तम राम का स्मरण किया ।

लाज...नारी का—नारी के लाज के भूषण की रक्षा करो ।

अक्लम—न थकने वाले ।

खींचता.. चोर—तुलसीदास के मन में कौन चोर पैठा हुआ उसके वस्त्र को खींच रहा है (मोह का चोर दुःशासन है, रत्नवली द्रौपदी है जिसका चीर खींचा जा रहा है)।

खुलता...साड़ी का—हे नाथ, पुर की लज्जा रूपिणी साड़ी का अंचल खुल रहा है ।

(७९)

कुछ काल . क्षय—आँधी उठने के पहले जो क्षणिक निस्तब्धता रहती है, वही इस समय उस घर में व्याप्त थी ।

(८०)

लौटे . कक्ष-शयन—अपने अपने कमरों में सोने वाले लौटे।

प्रिय.. चयनोत्कल—प्रियाओं के नयन प्रियों के नयनों से बँधे स्नेह चयन करते हैं ।

पलकों ..सुहाग— सुंदरियों के नेत्र खुले हुए हैं और उनसे स्नेह का राग निकल रहा है। प्रथम सुहाग का सुनहला स्नेह उन्हें सुदर बनाये है।

राग स्वप्नोत्पल—उन आँखों में स्वप्नों के कमल स्नेह के रँग में रँगे हुए खिले हैं।

(८१)

कवि स्थिर—कवि के मन मे जो सौंदर्य का भाव छलक रहा था, वह रत्नावली का स्थायी भाव न था, अतः उसके सौंदर्य से उत्पन्न भाव भी स्थिर न था।

बहती . धारा वह—रत्नावली के भीतर जैसे उल्टा रक्त प्रवाह हो रहा था। प्रियतम को देख पहले की भाँति उसके भीतर मोह न उमड़ रहा था।

लख द्वारा वह—प्रिय का पूर्ण चन्द्र-सा मुख देख कर उसके सिंधु-से हृदय में जो ज्वार उठा वह जलबिंदुओं से सचित, विपरीत दिशा मे बह रहा था। पति की तरह वह भी मोह मे न डूबी थी, अतः वह स्नेह जो अभी तक तुलसीदास के प्रति था, अब दूसरी ओर को बह रहा था।

(८२)

मारुत-प्रेरित—हवा से उड़ाई हुई।

घन-नीलालका—बादलों के समान काले केश वाली।

दामिनीजित—बिजली को जीतने वाली, उससे भी सुदर। (रत्नावली की तुलना पर्वत के समीप आई कादबिनी से की गई है)।

उन्मुक्त. समुच—कादबिनी को देख कर कवि का मयूरमन अपने सारे पख फैला कर नाच उठा।

वह जीवन की . वह—वह यह न समझा कि वह नारी का रूप धोखा भर था।

(८३)

शफरी-अलकें—मछली के समान लटें

निष्पात...पलकें—कमल-से नेत्रों की पलकों ने गिरना बंद कर दिया है।

भावातुर ..उपशमिता—भावों से आंदोलित हृदय की लहरें शांत हो गई थीं।

निःसंबल—बिना किसी सहारे के।

ध्यान-मग्न—सत्य के ध्यान में लीन।

जागी ..लग्न—वह रूप को त्याग, रूपहीन सत्य से संबन्धित, योगिनी के समान जागी।

वह...निरुपमिता—निरुपम सौंदर्य वाली प्रिय का मोह त्याग, वह कृश देह वाली खड़ी थी।

(८४)

स्वर्गीयाभा—स्वर्गिक प्रकाश।

स्वरित—मुखर हुई। बोली।

स्वर में . ज्य बोली—अपने शब्दों में जीवन भर कर बोली।

अचपल...चपला—वह ऐसे बोली जैसे बिजली चमकी हो, और वह बिजली की चमक स्थिर थी।

बलकी ..अबला—कहलाती अबला है, परंतु है वह बल की महिमा, विश्व के बल का प्रतीक नारी।

जागी .डोली—जैसे जलपर लक्ष्मी जागी हो अथवा सरस्वती ही चंचल हो उठी हो।

(८५)

अनाहूत—बिना बुलाये ।

धूत—पवित्र

कैसी...आए—जीवन मे सुदर शास्त्रादि की ऊँची शिक्षा पाकर नारी के चरणों पर जीवन निछावर करने के लिये तुलसीदास आये, शिक्षा का यह परिणाम उसे अच्छा न लगा ।

(८६)

सस्कार—मुक्ति के इच्छुक का पुराना सस्कार ।

काम—पत्नी के प्रति मोह ।

देखा. वह—नारी न रह कर, रत्नावली अग्नि की प्रतिमा जान पड़ी ।

प्रथम भान—पहला मोह ।

जड़िमा—माया जनित अज्ञान ।

(८७)

तुलसीदास ने पत्नी को सरस्वती के रूप मे देखा ; मोह की भावनाएँ बदल जाने पर नारी दिव्य-रूप में दिखाई दी ।

नील-वसना—नीले वस्त्र पहने ।

सृष्टि-रशना—सृष्टि की जिह्वा ।

जीवन ..निःश्वसना—जीवन की पवित्र वायु देने वाली ।

वरदात्री—वर देने वाली ।

वीणा . स्वर—अपने आप जैसे सरस्वती की वीणा बज रही हो, ऐसा रत्नावली का स्वर था ।

फूटी ..निर्झर—अमृत से अक्षर का शीतल निर्झर जैसे फूटा हो।

यह...श्री—शारदा के चरणों के विश्व लिए हंस के समान है; जिनपर उनके चरणों की कांति है।

(८८)

दृष्टि ..देखा—सरस्वती के दर्शन से एक बार फिर तुलसीदास के मन की उड़ान शुरू हुई।

धूमायमान .ताराहर—समस्त शून्य घूमते हुए धुएँ के समुद्र सा लगता था जिसमें चंद्र और तारे डूब-से रहे थे।

सूझता ..रेखा—उस शून्य में क्या ऊपर है, क्या नीचे, कुछ न सूझता था सभी सीमाएँ मिटती-सी जान पड़ती हैं।

(८९)

तारा—वही रत्नावली वाली तारिका।

द्युति...विलीन—उसमें शून्य की नीलिमा विलीन हो रही थी।

हो गई . अब—वह तारिका बदल कर सरस्वती हो गई जिनका अब कोई रूप न था। वह तारिका, तुलसीदास के नवीन दृष्टिकोण के कारण रत्नावली में परिवर्तित न हुई।

आभा.. मंद—उस तारिका का, सरस्वती का प्रकाश भी क्रमश. मंद हो गया।

निस्तब्ध. छंद—आकाश गतिहीन छंद सा नि.स्पन्द था, शून्य की सभी क्रियाएँ बंद थीं।

आनंद ..सब—इस आनंद की दशा तक पहुँचने से जीवन के द्वंद्व, बंधन आदि सब मिट गए।

(१०)

थे . ज्ञानोन्मीलित—ज्ञान के नेत्र खुले हुए थे, यद्यपि देखने को आँखें बंद थीं।

कलि ..स्थित—कलि के भीतर जैसे सुरभि रहती है, वैसे ही तुलसीदास अपने ही चित में स्थित थे।

अपनी . प्राणाशय—तुलसीदास की सम्पूर्ण प्राणशक्ति उनकी असीमता में स्थित है एक जगह होते हुए भी वह अपनी असीमता जान गए हैं।

जिस . बंद—जिस सौंदर्य में कवि ढँका था।

वह ..मंद—उस सौंदर्य का उसमें विकास हुआ।

भारती.. निष्प्रश्रय—सुगंध और छंद जैसे फूल और गति में विकसित होते हैं उसी प्रकार सरस्वती का उनमें विकास हुआ।

(११)

जब.. बोध—जब देह का ज्ञान हुआ।

शोध—खोज।

रह. प्रतिकूला—उनकी गति इस समय बाधा-विरोधहीन थी।

खोलती . निःशूला—गंध की धारा जैसे मुँदे दलों को खोलती वह चलती है, वैसे ही तुलसीदास की चेतना का निर्बाध प्रवाह था।

(१२)

लहरें—चेतना की लहरें।

जागे. . शब्दोच्छल—शब्दों के रूप में छलकते आकुल भाव जागे।

गूँजा . पर्वततल—तुलसीदास की जागृति का प्रभाव विश्व पर पड़ा, समस्त प्रकृति में भी जैसे नव जीवन आ गया।

मना...दूना—ऋषियों का त्रस्त हृदय कवि के स्वर को प्रसन्न होकर सुनने लगा।

आसुर...निश्चल—ऋषियों का मन आसुरी भावों में भस्म होकर निर्जीव हो चुका था।

(९३)

तुलसीदास ने जो सोचा, उसका उल्लेख किया जाता है।

जागा . अंध रात—अज्ञान की रात बीतने पर ज्ञान का प्रभात हुआ।

झरता...पूर्वाचल—पूर्व का पर्वत ज्योति का झरना झर रहा है (उदयगिरि पर ज्ञान-सूर्य उदित हुआ)।

बाँधो ..जीवन—अंधकार को जीतने वाले तपस्वियो, इन चेतना की किरणों का संग्रह करो।

आती...महिमाचल—भारत के ज्ञान-गौरव का अब प्रसार आरंभ हुआ।

(९४)

होगा...निशिवासर—जड़ और चेतन का भयानक संग्राम फिर शुरू होगा।

कवि ..भर—कवि का प्रत्येक जड़-रूप से युद्ध होगा और यह युद्ध कृत्रिम जीवन का नाश कर मानव को नवजीवन देने वाला होगा।

भारती ..कौशल—एक ओर सरस्वती हैं दूसरी ओर मायावी जीवन के सब कौशल हैं।

जय ..मायाकर—एक ओर ईश्वर और जय हैं दूसरी ओर माया करने वाले दैत्य हैं (दो संस्कृतियों के संघर्ष को ही जैसे तुलसीदास ने रामायण में राम-रावण के युद्ध में वर्णित किया हो।)

(१५)

हो रहे. जोड़ेगी—जीवन के जो छोटे छोटे दल छिन्न होकर बिखरे हुए हैं, उन्हें अविच्छिन्न कवि की नवीन कला जोड़ेगी।

रवि-कर.. मोड़ेगी—सूर्य जैसे बिंदु बिंदु जल संचित कर बादलों से बरसाता है और विश्व के वक्ष को नव जीवन से गहरा देता है, वैसे ही कवि की कला लोभ-मोह आदि से ग्रस्त मानवों को ज्ञान की ओर प्रेरित करेगी।

(१६)

देश ..छविधर—देशकाल की बाधाओं से पीड़ित इस छवि की चेतना जागी है, उसे अपनी असीम सुन्दरता का बोध हुआ है।

निश्चेतन.. सोएँगी—राग, द्वेष, छल कपट आदि की जो रागिनियाँ बहती थीं और समाज को निर्जीव किए थीं, वे अब सोएँगी।

(१७)

जग के जागो—संसार की वीणा अज्ञान के अंधकार में डूबी थी, उस पर ज्ञान का प्रकाश पड़ा। अब उसमें से नए वसंत के स्वर निकलेंगे।

इस . माँगो—इस वीणा के स्वरों से अपने प्राणों में नवीन शक्ति संचित कर लो।

(१८)

क्या सुना—कहाँ क्या हुआ, कवि ने कुछ न देखा, अपनी बातें उसने मन में ही सोच लीं।

साधना. प्राणों की—इस समय केवल प्राणों में साधना का भाव जाग्रत था।

देखा.. नानों की—सामने रत्नावली को आँखों में जल भरे देखा। वह जैसे विश्व-संगीत की प्रतिमा निरुपम सौंदर्यवाली थी।

(९९)

जगमग...भाप—चेतन जीवन की अन्तिम बात जो कवि ने अपनी पत्नी से कही।

लेता मैं...वहने का—जो वर जीवनभर वहन करने को है, लेता हूँ।

(१००)

डर में . सुघर—रत्नावली की सुंदर मूर्ति।

जागी . महिमाधर—उसे विश्व को आश्रय देने वाली गौरवमयी मूर्ति के रूप में देखा।

संकुचित पटल—सरस्वती जो कमलों को खोल रही थी।

बदली सुगजल—लक्ष्मीरूप में जल पर तिरती दिखाई दी।

प्राची रेखा—और उसी मूर्ति का प्रकाश जैसे सूर्य की सुंदर रेखा के रूप में पूर्व में फूटा हो।
